विज्ञान की बिक्री

पी. बालाराम

उद्योग जगत में तो नई-नई चीज़ों को बेचने के लिए झूठे व संदेहास्पद दावे करना आम बात है। हम काफी हद तक ऐसे विज्ञापनों को सहन करना सीख गए हैं जिनमें दावा किया जाता है कि फलां क्रीम हमें गोरा बना देगी या फलां मलहम लगाने से गंजे सिर पर बाल उग आएंगे। कई चीज़ों के बारे में किए जाने वाले दावे तो सरासर झूठे होते हैं। मगर विज्ञान में यदि झूठे दावों की बिक्री आक्रामक ढंग से की जाए तो काफी खतरनाक हो सकता है।

वैज्ञानिक लोग अन्य वैज्ञानिकों को अपने काम का महत्व समझाने में काफी समय व्यतीत करते हैं। आजकल के विज्ञान में अपने क्षेत्र से जुड़े साथी वैज्ञानिकों की सहमति व स्वीकृति हासिल करना एक महत्वपूर्ण काम है। शोध पत्रिकाएं, इंटरनेट पर बुलेटिन बोर्ड, सेमीनार, सिम्पोज़ियम वगैरह एक विस्तृत बाज़ार ही हैं। ये वे स्थान हैं जहां वैज्ञानिक अपने कार्यों को प्रदर्शित करते हैं, बेचते हैं। सवाल यह उठता है कि क्या विज्ञान को बेचा जा सकता है? क्या विज्ञान एक वस्तु है जिसकी स्वीकार्यता को विपणन की तकनीकों से बढ़ाया जा सकता है? क्या प्रतिस्पर्धा के इस युग में वैज्ञानिक शोध के नतीजों की स्वीकार्यता पर भी पैकेजिंग और विज्ञापनों का असर होता है? इन सब सवालों पर विचार करते हुए मेरा ध्यान एक पर्चे पर गया - 'क्या विज्ञान विपणन है'। इस पर्चे के लेखक हैं जे.पी. पीटर और जे.सी. ओल्सन। पर्चा दरअसल 1983 में छपा था। लेखकद्वय अपने पर्चे की शुरुआत इस सवाल से करते हैं - 'क्या विपणन एक विज्ञान है?' यह सवाल विपणन (मार्केटिंग) से जुड़े लोग बरसों से पूछते रहे हैं। इस सवाल पर टिप्पणी करते हुए पीटर व ओल्सन कहते हैं - 'विपणन एक विज्ञान है या नहीं, इस विषय पर बहस अनिर्णीत ही रही है। दरअसल इस संदर्भ में जो भ्रम है उसका कारण हमें यह लगता है कि विज्ञान को लेकर जो धारणा है वह बहुत सरलीकृत है। वैज्ञानिक कैसे काम करते हैं और विज्ञान में प्रगति कैसे होती है, इसे लेकर दर्शनशास्त्र, समाज विज्ञान और विज्ञान के इतिहास जैसे विषयों में जो दृष्टिकोण दिखता है उसमें और आम धारणा में काफी अंतर है।'

इसके बाद पीटर और ओल्सन इस विषय पर आते हैं कि 'क्या विज्ञान एक व्यापार है?' अपने लम्बे विश्लेषण में वे वैज्ञानिकों द्वारा विज्ञान के विपणन के लिए अपनाई गई विविध तकनीकों का ज़िक्र करते हैं। उनका मत है - 'शोध पत्रिकाओं, पुस्तकों और सम्मेलन कार्यवाहियों में प्रकाशन के ज़रिए प्रत्यक्ष विज्ञापन के अलावा किसी सिद्धांत को निजी बिक्री या प्रचार-प्रसार के द्वारा भी बेचा जा सकता है। यहां सिद्धांत से आशय किसी भी वैज्ञानिक खोज से है।

सफल विपणन के लिए किसी सिद्धांत में क्या गुण होने चाहिए? इस सवाल का जवाब देते हुए पीटर व ओल्सन कई मुद्दे उठाते हैं। उनकी राय में किसी वैज्ञानिक की व्यावसायिक हैसियत तथा प्रामाणिकता का असर सिद्धांत की बिक्री पर पड़ता है। किसी क्षेत्र में अपने पूर्व योगदान के लिए जाने-माने वैज्ञानिक के लिए कोई नया सिद्धांत पेश करना ज़्यादा आसान होता है। वैज्ञानिक/विपणनकर्ता की विश्वसनीयता उस सिद्धांत को वैसे ही एक आभा मंडल प्रदान कर देती है।

एक अत्यंत चौंकाने वाली टिप्पणी यह है कि किसी सिद्धांत के पक्ष में सशक्त प्रायोगिक प्रमाण अत्यंत वांछनीय हैं और इससे उस सिद्धांत को बेचना आसान हो जाता है। मगर किसी सिद्धांत के प्रसार के लिए सशक्त प्रमाण का होना न तो लाज़मी है, न पर्याप्त। पीटर व ओल्सन के इस विश्लेषण के 20 साल बाद आज शोधकर्ता, लेखक, संपादक, रेफरी, व्याख्याता, समितियों के सदस्य व प्रशासक जैसी विभिन्न भूमिकाएं निभाते वैज्ञानिक इस बात से सहमत होंगे कि वैज्ञानिक उपलब्धियों के लिए आविष्कार प्रवृत्ति, निष्ठा,

मौलिकता या अच्छी किस्मत के बराबर ही महत्व मार्केटिंग का भी है।

शोध पत्रिकाओं में पर्चे प्रकाशित करना आज भी वैज्ञानिक शोध के विपणन का सबसे विश्वसनीय तरीका है। मगर आजकल सही पत्रिका चुनना और अपने पर्चे को समीक्षा प्रक्रिया के पार लगाना एक कठिन काम हो गया है। दूसरी ओर, विज्ञान पर व्यापार की भाषा हावी हो रही है। प्रमुख शोध पत्रिकाओं ने स्वयं को बाज़ार में होड़ के हिसाब से ढाल लिया है। पत्रिकाओं का प्रयास होता है कि वे प्रभाव गुणांक (इम्पैक्ट फैक्टर) की पायदान चढ़ती जाएं और जैसे ही अपने प्रतिस्पर्धी से एक पायदान ऊपर पहुंचे, वैसे ही इस बात की घोषणा बड़े-बड़े विज्ञापनों के ज़रिए करें। और यही प्रभाव गुणांक लेखकों को आकर्षित करता है कि वे अपनी वस्तु के बारे में उस पत्रिका में बताएं। एक ताज़ा आलेख में पीटर लॉरेंस ने कहा है कि "किसी पर्चे के प्रकाशन का फैसला लेखक, सम्पादक और समीक्षक की परस्पर क्रिया से होता है। वैज्ञानिक अपने पर्चे सर्वोच्च पत्रिकाओं में छपवाने को आतुर रहते हैं और इसके लिए पांडुलिपि में फेरबदल करने तथा सम्पादक को रिझाने में काफी समय व ऊर्जा बरबाद करते हैं। नतीजतन, अपने काम के वस्तुनिष्ठ प्रस्तुतीकरण, आलेखों की उपलब्धता और शोध की गुणवत्ता के साथ समझौते किए जा रहे हैं। लॉरेंस आगे कहते हैं कि "हमारी (वैज्ञानिकों की) भाषा में भी यह बात झलकने लगी है - जैसे हम कहेंगे कि जिम जार्गन बढ़िया छात्र था क्योंकि उसने वह 'सेल' पर्चा छपवा लिया।" ('सेल' से आशय सेल नामक पत्रिका से है।) इससे पता चलता है कि आज शोध कार्य में ज़्यादा महत्व उस पत्रिका का है। 'सेल' वह पत्रिका है जिसने 'नेचर' व 'साइंस' जैसी पत्रिकाओं से होड़ करते हुए जैव चिकित्सा विज्ञान के शोध के विपणन को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया है। 'सेल' के संपादक लेखकों को रिझाते हैं कि वे अपनी सनसनीखेज़ खोजों की खबर उनकी पत्रिका में प्रकाशित करें। 'सेल' के सम्पादक व सम्पादकीय सहयोगी लेखकों की तलाश में सम्मेलनों में पहुंचते हैं और उन्हें आश्वासन देते हैं कि समीक्षा प्रक्रिया को शिथिल कर दिया जाएगा।

'द साइंटिस्ट' पत्रिका के रिचर्ड गैलागर ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा था कि निश्चित तौर पर तीन बड़ी शोध पत्रिकाओं 'नेचर', 'साइंस' और 'सेल' का असर विज्ञान के प्रति नज़रिए और विज्ञान के विकास पर होता है। मगर इसके साथ ही गैलागर यह सवाल भी पूछते हैं - 'क्या इस वर्चस्व को ध्वस्त करने का वक्त आ गया है?' गैलागर यह रोचक विचार भी प्रस्तुत करते हैं - 'चंद लोगों के हाथों में बहुत ज़्यादा ताकत केंद्रित हो गई है, कि ये व्यक्ति नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं, या शायद जानते हैं मगर जिन मानकों के आधार पर चलते हैं वे वैज्ञानिक समीक्षा की बजाय हॉलीवुड से ज़्यादा मेल खाते हैं जहां स्टार को प्राथमिकता दी जाती है।'

शोधकर्ता, लेखक, संपादक, रेफरी, व्याख्याता, समितियों के सदस्य व प्रशासक जैसी विभिन्न भूमिकाएं निभाते वैज्ञानिक इस बात से सहमत होंगे कि वैज्ञानिक उपलब्धियों के लिए आविष्कार प्रवृत्ति, निष्ठा, मौलिकता या अच्छी किस्मत के बराबर ही महत्व मार्केटिंग का भी है।

जैसा कि लॉरेंस और गैलागर दोनों ही कहते हैं, वैज्ञानिक लोग उतावलेपन की हद तक उच्च प्रतिष्ठित पत्रिकाओं पर मंडराते हैं। ऐसा क्यों करते हैं वे? एक शोधकर्ता व लेखक होने के नाते लॉरेंस का मत है कि वैज्ञानिकों का मूल्यांकन शोधपत्रों की संख्या, लेखकों की सूची में स्थान और शोध पत्रिका के प्रभाव गुणांक से होता है। जापान, स्पेन व कई अन्य स्थानों पर तो इसे एक सटीक सूत्र का रूप दे दिया गया है। मगर इसके लिए सिर्फ नौकरशाही ज़िम्मेदार नहीं है - हम वैज्ञानिकों ने भी उत्साहपूर्वक साथ दिया है। जो चीज़ किसी अन्य द्वारा बनाए गए मापक के रूप में शुरू हुई थी, आज वह हमारा अपना लक्ष्य बन गई है। यह सही है कि शोधपत्र वहां प्रकाशित करना चाहिए जहां ज़्यादा लोग उसे पढ़ेंगे मगर हम जब विज्ञान की बजाय पत्रिकाओं को ज़्यादा महत्व देने लगते हैं तो हम अपनी ही दुनिया में बेगाने हो जाते हैं।

शोध पत्रिकाओं और उनके प्रभाव को लेकर पागलपन